डॉ॰ आशा रानी लाल

पिता : स्व॰ रहस बिहारी सिन्हा
जन्म स्थान : सँवरूपुर, बलिया, (उ॰प्र॰)
पति : डॉ॰ रामा शंकर लाल
ससुराल : भटमीला, आजमगढ़, (उ॰प्र॰)
मो॰ : 9968438886
पेशा : सेवानिवृत प्राचार्या, विद्या भवन महाविद्यालय, सीवान, बिहार (२००२)
सम्मान : i) 'भोजपुरी विकास मण्डल' के चउथका अधिवेशन(१९९९) में पुरस्कृत ii) अ॰ भा॰ भोजपुरी सहित्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित (२००३)
किताब : ए बचवा फूल फर (१९९६), हमहूँ माई घरे गइनी (२००१), दिठौना (२००४), माटी के भाग (२००५), सितली (२००७), देवकुरी (२०११), जैय कन्हइया लाल की (२०१२) काहे कहली - ईया(२०१३),

मन नाहीं दस-बीस

ऊ हिम्मती रही, साहसी रही, उनका लगे एगो आपन हौसला रहे, ऊ अपना जुबाने के ना अपना विचारो के पक्का रही । उनकर नाँव सुखिया रहे, एहिसे अपना ऊ रोंवाँ-रोंवाँ से निकसल दुख के अपना मुँह से बहिरयाइल आह क आगी में हरदम स्वाहा कइल करत रही आ कब्बो केहु से कुछउ कहत ना रही । अपना बाप-भाई क पगड़ी क खियाल उनका हरदम बनल राहत रहे । आपन दुनू कुल नइहर आ ससुरा क भलाई में उ आपन भलाई देखत रही । अएगुन त सबकरा लगे सटले रहेला, उनको लगे रहे, बाकी एही उम्मीद पर ऊ अपन दिन काटत रही कि एक-न-एक दिन एहु डाढ़ पर फूल फुलाई आ बसंत ऋतु आई । 'आई ना - अइबे करी' - इहे उकर विश्वास रहे ।

ऊ अपना ससुराल क जिनगी में चोट पर चोट खइली । क बेरी गिरली आ क बेर उठली । क बेर आहि-आहि क-के साँझ से बिहान कइली । बाकी केहु से अपना चोटाइल जिनगी क कथा कुछउ ना सुनवली । कबो चिल्लइली नाहीं - एहसे कि लोगवा सून लिही आ जान जाई । ऊ ना बतवली कि उनकर मरद उनके अपना घरे से भगवले रहन । मरद के नाँव आवते ऊ लजा जात रही | उनकर मुँह लाज के मारे लाल हो जात रहे । आपन आँख एने-ओने चोरावे लागत रहली । उनकर लुकाइल पियार होठवा पर आके नाचे लागत रहे आ कबो-कबो आंखिया में उनकर मोहो-माया उभर जात रहे ।

सास-ससुर , भसुर आ ननद सब मिल के उनका बाप के बुला के उनके नइहर पेठा देले रहे । एहिके चलते उनकर ससुरा उनसे छुट गइल रहे - इहे ऊ गाँव के लोग के बतलवले रही । बाकिर ससुरा से दूरदुरावे के असल कारन रहे कि उनका ना नीक खाना बनावे आवत रहे ना केहुसे बोले-बतियावे । ठीक से कपड़ा-लाता, साड़ी-लुगा पहिने त आवते ना रहे । लजाये-बिजाए के के कहो, ठीक से रहे के कवनो सहुर ना रहे ।

इहे कुल बतिया सोच के एक बेर ऊ काँपे लगली आ अपना भउजी से कहली -"ओह घरी हम केतवत रहनीं ए भउजी ! हमार काँच उमिर रहे एसे माइयो हमरा के खाना बनावे ना देत रहे । हमेसा इहे कहे कि ससुरा में त एक रोज बनावही के बा । अबहीं त खेले के ऊमीर बा आ हम खेलते रह गइलीं । भउजी तू ही नू गावत रहलू - 'हम त खेलत रहीं बाबा क अंगनवां कि आइए गइले ना । लेके डोलिया कँहार कि आइए गइले ना । ऊ जे भसरु निरमोहिया कि आइए गइले ना |'

आ डोली कँहार के आवते न तूँ हमके चुनरी

पहिना के हमरा ससुरा भेज देले रहू | हम चिघरत-चिल्लात, रोवत-बिलखत माई के छोड़ के चल गइलीं । उहाँ सब डेगे-डेगे हमार ऐगुनवे ताके आ निहारे । हमार नउओ लिहल केहू ना चाहे । घूघ कढ़ले सबका गोड़े गिरलीं बाक़िर सभे लतियइबे कइल । पुचकारे भा दुलारे के कहो । सालो ना बितल कि लूर-ढंग के बहाने नइहर पठा देलस लोग ।"

नइहर पहिलहीं से 'हमार घर ह' के भ्रम इहवां कुछ दिन बितवाते टूट गइल | अब ई घर भउजी लोग के हो गइल रहे । हमेसा सुने के मिले लागल - जे ससुरा में ना खपल ऊ नइहर में का खपी । सब सुनके उ चुप्पीए सधले रहत रही । बाक़िर उनकर मनवा कबो चुपात ना रहे । अपना मनवे से अब उ हरदम बोलत-बतियावत रही । अपना मने-मने कँहरत रही बाकी केहु से ना कहली - " हम सुखिया से दुखिया कइसे बन गइलीं । हमार भउजी हमके अपना घरे से इहे कह के कबो-कबो बहिरिया देत रही कि ससुरवा वाला त पुछते नइखन सन तब इनकर भार कहिया ले ढोअब । हमार जिनिगी सही में अब पहाड़ भ गइल बा ।"

अचक्के में एक दिन सुनलीं कि भिटा पर वाली फुआ आइल बाड़ी । लागल कि उनका मन के एगो बुताइल दिया भक से बर गइल । कुछुवे दिन के पहिले के बात रहे - उनका फूफा के अइसन बेमारी भइल कि ऊ राति के जे सुतलन त भोरे उठबे ना कइलन ।

"फूआ कइसन होइहन । उनकर दमकत उज्जर लिलार अब सेनूर के बिना कइसन मुरझा गइल होई । ऊ त सुन्न लागत होई । आजो फुआ ओसहीं हँसत खिलखिलात होइहन का ?" - इहे कुल देखे सुने खातिर भेंट करे भिटा ओर चल दिहली । फुआ के दुख के आगे ऊ आपन दुख ओसहीं भुला गइली जइसे दिन उगते अन्हरिया । ऊ सोचे लगली _ "फुआ के त लोग अब बेवा कही, विधवा कही । हम त सधवा बानीं| बाक़िर दुख दूनू ओर बा । फुआ भर हाथे चूड़ियो ना पहिनिहन, लिलार पर टिकुली ना सटिहन, लाल-पियर चुनरी ना पहिनिहन । त का भइल ? हम त ई सब सिंगार-पटार कइओ के उनका से ढेरे दुखी बानी । उनका मन के दिया त अब कबो ना जरी । बाक़िर हम ? हम त केनियो के नइखी ।" सुखिया फूआ घरे चलत जात रही आ सोचत रही - " उनसे हम का बतियाइब ? कुछ ना बोलम त करेम का ?"

सोचते-सोचते उ फूआ घरे पहुँचिये त गइली आ उनके अँकवारी में ध के लागली भेटें । रोवते-सुसुकते लगली कहे -" फूआ हो ! हम त केनियो के ना भइनीं - ना घरे के ना घाटे के । ससुरा में रहीं त सभे हमके भिन-भिन कइले रहत रहे । दिन भर घूघ काढ़ के काम करत रहीं तबो सास-ननद कहस कि हमरा काम करे के सहुरे नइखे । भर दिन जाँगर ठेठावत रहत रहीं त रात भर अकेले बिछौना पर छटपटात रहीं । कबो चुल्हा-चउका आ घर-अँगना से छुटिए ना पावत रहीं । रात में जिनगी क धुप्प अन्हरिया साँप बन के डँसत रहे । कबो एह मन आ देह के चैन ना भेंटात रहे । फूआ हो ! हमार मन ससुरा से ओसहीं फाट गइल जइसे जतन ना कइला से दूध फटेला ।

ए फूआ ! तू हमके इहे बताव कि हमार माई त हमके कवनो सहुर ना सिखवलस त कवन कहीं कि हमार सासे अपना बेटवा के सहुर से रहे के सिखवले रही । ऊ हरदम हमके सुनावल करस कि मरद त छुट्टा सांढ कहाला, जेने चाही रात-दिन घुमत फिरत रही । मेहरारू नू गाय कहाले जेके खूंटा में बान्ह के रखल जाला |

खाली बेटिए के सहुर सिखावल जाला का ए फूआ? बेटा के ना ? तू ही बताव | बेटवा के एतना छूट कि बियाह के बादो ऊ पचासन गो काँच-कुंवार चाहे बियहल लइकियन के आगे-पीछे घूमत रहो, आँख लड़ावत रहो । आ पतोहिया के दिन भर कोल्हू के बैल नीयर चला के लोग अपना पूरा परिवार के रस पियावत रहस ।

फूआ हो हम जनिती कि इहे बियाह कहाला त कवनो गड़ही-पोखरा में जाके डूबि धंसि जइतीं बाकिर कबो बियाह के नाम ना लेतीं । हमरा जिनगी में ई बियाह एगो अइसन सुच्चा गेहुँअन साँप बन के आइल बा - जवन रोजे डँसता । ओह जहर से ना हम मरत बानीं ना जियतानी । हमार मनवा करकराता, डँहकता, छटपटात बा आ केहु एके जानियो नइखे पावत ।

हम तोहसे का-का बताईं ए फूआ! ससुरा से धकिया के नइहर भगावल गइनी । सोचनी अपना घरे

(नइहर) चल अइनी । बाक़िर भउजाई लोग के ठोनहच रोज सुनाये लागल _ जे ससुरा के ना भइल ऊ नइहर के का होई ? बहुते लूर-ढंग सीखलीं - खजूर के पतई के चटाई, गेंहू के डंडी के बेना, मूँज के डाली-दउरी आ मउनी,

फाटल लुगरी के लेवा-गुदरा । ई सब कवना काम के ? सोचनी एगो दुखिए नू दोसरा दुखिया के बूझी आ तहरा से मिले हम आ गइनीं ।"

सुखिया के बात फूआ चुप-चाप सुनत गइली । फूआ के बुझाइल कि केहू उनका के हजारन काँटा चुभा देले होखे । का बोलस ? बात सुन के उ बेचैन हो गइली । फूआ नवका विचार के ठहरहली । जिनगी के ले के उनकर आपन अलगे विचार रहे | उनका हिसाब से जिनगी कवनो ठहरल दरिया के सोता ना रहे | लगले सुझाव दे डलली _ " ए बछिया ! एतना कलपत काहें बाड़ू । जिनगी कवनो एगो मोकाम पर आके ठहर जाये वाला चीज ना ह । केहू अकेले काहें डँहकी ? ना कवनो बाल-बच्चा । माई-बाप मारिए गइल बा । अब तोहरा पर ना कवनो बन्हन-बान्हल बा, ना तोरा कपारे केहु के हाथ बा । रोअला-धोअला से कुछ ना मिली । तेहू कवनो लइका देख आ लपक ले । दोसार बियाह क ले ।

जिनगी फेर से सँवर जाई । 'के का कही' - सोचला के कवनो जरूरते नइखे ।"

फूआ से एतना सुनते सुखिया चकरा गइल आ कहलस _ "ई तू का क़हत बाड़ू ए फूआ ! पूरा जवारे में आग जइसन बात फईल जाइ । जाति-बिरादरी के कहो गांवो से लोग बहरिया दी । ससुरा वाला त जर-बुता जइहन स । मौका पावते मार लाठी हमरा के थूर दिहन स ।"

फूआ कहली "ए बाबुनी ! सुन - शहरिया में त ई सब रोजे होत बा । केहू कुछु नइखे कर पावत । अब त कोर्टो-कचहरी भी महरारून के बात सुनत बा | तू हमरा साथे शहर चल । उंहा जिये के पचास गो अलम बा - तोर बेना , चटाई, मउनी, सुइटर बिनला के ढेर कदरदान भेंटइहें । उंहवा कवनो नीक लइको मिल जाई । बियाहो कोर्ट-कचहरी में कवनो वकिल करवा दिही । फेर से जिये ला नया जिनगी मिल जाई ।"

"फूआ हो ! बात त तू ठीके क़हत बाड़ू । बकिर मन के हम का कहीं ? इज्जत कहीं ओड़ा तर ना नू लुकाला । कबो ना कबो त बात खुलिए जाई । हमार बाप-माई, भाई-भउजाइ, गोतिया-दयाद, गाँव-जवार जवन इज्जत जोगा के रखले बा उ हमरा चलते त तारे-तार हो जाइ । सभे सरापी आ गरियाई । मन के कइसे समझाईं ए फूआ? ना फूआ ना - मन नाहीं दस-बीस ।"

##########################